REG. NO. RAJHIN /2002/14707

उत्तमा वृत्तिस्तु कृषिकर्मैव

चोखी खेती

अगस्त, 2026

मरू भूमि की हरी संपदा : पोषण और औषधीय गुणों का भंडार

प्रहलाद सहाय शर्मा[1], डॉ. कपिल देव आमेटा[2], सोनू कुमारी[3] और संजय सीमावत[4]

पश्चिमी राजस्थान के मरु क्षेत्र में कम वर्षा, उच्च तापमान तथा सूखे जैसी कठोर परिस्थितियों के बावजूद अनेक देशी सब्जियाँ उगाई जाती हैं। इनमें खेजड़ी सांगरी, काचरी, ग्वारफली, ककोड़ा, लसोड़ा, चौलाई तथा नागफनी प्रमुख हैं। ये सब्जियाँ पोषक तत्वों, विटामिन, खनिजों और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होती हैं तथा अनेक औषधीय गुण रखती हैं। स्थानीय लोग इनका उपयोग ताजा तथा मूल्य संवर्धित उत्पादों के रूप में करते हैं। सूखा–सहनशील होने के कारण ये सब्जियाँ मरुस्थलीय क्षेत्रों में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनके वैज्ञानिक उत्पादन और संरक्षण से किसानों की आय बढ़ाने तथा क्षेत्र की पोषण स्थिति सुधारने में सहायता मिल सकती है।

1. सांगरी

खेजड़ी मरुस्थलीय क्षेत्रों का एक बहुउपयोगी, सूखा–सहनशील तथा पर्यावरणीय दृष्टि से महत्वपूर्ण वृक्ष है, जो लेग्युमिनेसी कुल का सदस्य है। यह पश्चिमी राजस्थान की शुष्क एवं रेतीली भूमि में सफलतापूर्वक विकसित होकर खाद्य, चारा, ईंधन तथा पारिस्थितिकीय लाभ प्रदान करता है। इसकी फलियाँ (सांगरी) एवं पत्तियाँ प्रोटीन, खनिज तथा अन्य पोषक तत्वों से समृद्ध होती हैं और भोजन एवं औषधीय उपयोग में लाई जाती हैं। खेजड़ी वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती है, जिससे फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है। पत्तियाँ पशुओं के लिए उत्तम चारा तथा लकड़ी ईंधन का महत्वपूर्ण स्रोत है। मरुस्थलीय पारिस्थितिकी, पोषण सुरक्षा एवं ग्रामीण आजीविका में इसके महत्वपूर्ण योगदान के कारण इसे मरुस्थल का "कल्पवृक्ष" कहा जाता है।

पोषक–मूल्य

सांगरी (फली) में 13–30 प्रतिशत प्रोटिन, 6–16 प्रतिशत, ग्लूकोस, 0.21–0.27 प्रतिशत फॉस्फोरस, 0.35-0.90 प्रतिशत पौटेशियम, 3.20–4.10 प्रतिशत कैल्शियम, 0.6–0.9 प्रतिशत मैग्नेशियम तथा 45–55 प्रतिशत कार्बोहाईड्रेट की मात्रा पाई जाती है। ताजा हरी व सूखी दोनों प्रकार की सांगरी का उपयोग किया जाता है।

औषधीय गुण

खेजड़ी की छाल कड़वी, कसैली और कृमि नाशक होती है इसका बुखार, त्वचा रोग, प्रमेह, उच्च रक्तचाप, पेट के कीड़े एवं वात व पित्त के कारण होने वाले रोगों के उपचार में प्रयोग किया जाता है। खेजड़ी के कोमल पत्तों का पेस्ट बनाकर बराबर मात्रा में मिश्री मिलाकर इसका नियमित सेवन करने से एनीमिया रोग में फायदा मिलता है।

2. कैर

कैर, कैपेरेसी कुल का बहुद्देशीय पौधा है और यह कैपेरिस वंश के अंतर्गत आता है। इसका वैज्ञानिक नाम कैपेरिस डेसिडुआ है। कैर का उत्पति स्थान भारत को ही माना जाता है। कैर मुख्यतया राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, पाली, चूरू, सीकर और नागौर जिले में बड़े पैमाने पर होता है। कैर का फल आमतौर पर अचार व सब्जी बनाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इन्हें सुखाकर (निर्जलिकृत) स्वादिष्ट सब्जी पंचकुटा के

1. विद्यावाचस्पति छात्र, 2. आचार्य, 3.विद्यावाचस्पति छात्रा, 4.विद्यावाचस्पति छात्र
उद्यान विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान *ईमेल:- pcsorthiya@gmail.com

पांच में से एक तत्व के रूप में काम लेते हैं।

पोषक–मूल्य

कैर के फलों में विटामिन ए, बी 2 व सी प्रचुर मात्रा में होते हैं। फलों में 56 प्रतिशत जल, 8.6 प्रतिशत कूड प्रोटीन, 5.02 प्रतिशत वास्तविक प्रोटीन, 1.8 प्रतिशत कुल शर्करा, 0.057प्रतिशत फास्फोरस, 1.026 प्रतिशत पौटेशियम, 0.557 कैल्शियम, 0.055 प्रतिशत मैग्निशियम तत्व तथा 7.81 मि.ग्राम 100 ग्राम एस्कोर्बिक अम्ल पाया जाता है।

औषधीय गुण

कैर का फल औषधीय गुणोयुक्त होता है जो हृदय रोग, वात, पित्त व कब्ज रोग से ग्रसित व्यक्तियों के लिए लाभदायक होता है। इसकी पत्तियां व मुलायम टहनियों को पीसकर फोड़ों पर बांधा जाता है। फलों का पाउडर छाले, दांत दर्द व विषनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है। कैर के फलों का स्वाद कसैला व कड़वा होता है लेकिन यह मधुमेह के रोगियों के लिए लाभकारी होता है।

3. काचरी

यह वानस्पतिक समूह में कुकुमिस मेलो की जंगली, अवर्णित एवं अप्रचलित प्रजाति केलोससध्एग्रेटिस अथवा पर्यायरूपी कुकुमिस केलोसस या कल्चर के नाम से संकलित है। जंगली अवस्था में इस प्रजाति के पौधे प्रायः वर्षा ऋतु में स्वतः ही शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की खरीफ फसलों विशेषकर बाजरा, ज्वार, मक्का व ग्वार के खेतों में किसान इसे अल्पप्रचलित उगाते हैं। इसके परिपक्व फलों को सब्जी व चटनी एवं खट्टे–मीठे पके फलों को कच्चा खाने के उपयोग में लिया जाता है।

पोषक–मूल्य

काचरी के फलों में पोषक तत्व अत्यधिक मात्रा में पाए जाते हैं। 100 ग्राम ताजा खाद्य भाग में लगभग 88.25 प्रतिशत जल, 7.45 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0.28 प्रतिशत प्रोटीन, 1.28 प्रतिशत वसा तथा 1.21 प्रतिशत रेशा पाया जाता है। इसमें खनिज तत्वों के साथ विटामिन–सी (29.81 मिलीग्राम) एवं ऊर्जा (47.24 किलोकैलोरी) भी उपलब्ध होती है। सूखे फलों में भी उच्च पोषण मूल्य पाया जाता है, जिसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, रेशा, खनिज लवण तथा सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे कैल्शियम, लौह, जस्ता, तांबा एवं मैंगनीज सम्मिलित हैं। इसके कारण काचरी मरुस्थलीय क्षेत्र में एक सूखा–सहनशील, पोषक एवं औषधीय महत्व वाली देशी फसल मानी जाती है, जो पोषण सुरक्षा एवं ग्रामीण खाद्य प्रणाली में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

औषधीय गुण

गर्म शुष्क क्षेत्रों में काचरी के फल, बीज, रस विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं का इलाज करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। काचरी के फलों को त्वचा के लिए शीतल, हल्का सफाई या मॉइस्चराइजर के रूप में उपयोग किया जाता है। काचरी के फूलों को उत्सवों के के दौरान प्रयोग किया जाता है। फल पेट दर्द के उपचार में उपयोगी हैं। बीज का उपयोग पाचन और मूत्र संबंधी समस्याओं और हानिकारक कीडों के नियंत्रण में किया जाता है। बीजों को महत्वपूर्ण एंटीऑक्सीडेंट, सुजन अवरोहि और एनाल्जेसिक माना जाता है।

4. फूट ककड़ी (काकड़िया)

काकड़िया पश्चिमी राजस्थान के थार मरुस्थल की एक प्रमुख, सूखा–सहनशील एवं लोकप्रिय सब्जी है। यह कुकुर्बिटेसी कुल से संबंधित है और कम जल में भी अच्छी उपज देने की क्षमता रखती है। स्थानीय भाषा में इसे फूट ककड़ी या काकड़ीया भी कहा जाता है। यह वर्षा आधारित फसल के रूप में ग्वार, बाजरा, मोठ, तिल आदि के साथ मिश्रित रूप में उगाई जाती है। इसकी फसल सामान्यतः सितम्बर से नवम्बर तक प्राप्त होती है, जबकि सिंचित क्षेत्रों में इसे ग्रीष्म ऋतु में भी उगाया जा सकता है। यह मरुस्थलीय कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

पोषक–मूल्य

काकडिया के ताजा खाद्य भाग के 100 ग्राम में 79.93 ग्राम पानी, 15.56 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 79.29 किलो कैलोरी ऊर्जा, 0.36 ग्राम प्रोटीन, 1.12 ग्राम वसा, 1.34 ग्राम फाइबर, 164 ग्राम कुल राख, 0.76 मिलीग्राम कैल्शियम, 0.008 मिलीग्राम फास्फोरस, 0843 मिलीग्राम लौह, 0.104 मिलीग्राम तांबे, 0.202 मिलीग्राम जिंक और 1.86 मिलीग्राम विटामीन सी पाया जाता है।

औषधीय गुण

काचरी के फलों समान ही काकड़िया के फलों का रस त्वचा के लिए शीतल हल्का क्लीनर या मॉइस्चराइजर के रूप में उपयोग किया जाता है। इसे जलने और घर्षण घात के प्राथमिक चिकित्सा उपचार के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है।

5. ग्वार फली

ग्वार मरुस्थलीय क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण, सूखा–सहनशील तथा गहरी जड़ वाली फसल है, जो कम उर्वरा एवं रेतीली मिट्टी में भी सफलतापूर्वक उगाई जाती है। यह कम वर्षा और कठोर जलवायु परिस्थितियों में भी अच्छी पैदावार देती है। भारत के कुल ग्वार उत्पादन का लगभग 85 प्रतिशत राजस्थान से प्राप्त होता है। यह एक बहुउद्देशीय फसल है, जिसका उपयोग हरी सब्जी, पशु चारा, दाना, हरी खाद

तथा मृदा संरक्षण में किया जाता है। इसके दानों से ग्वार गम प्राप्त होता है, जो आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह प्रोटीन एवं रेशा का अच्छा स्रोत भी है।

पोषक—मूल्य

ग्वार की 100 ग्राम फली में कैल्शियम 130 मिलीग्राम, कार्बोहाइड्रेट 11 ग्राम, ऊर्जा 16 किलो कैलोरी, रेशा 3 ग्राम, लौह 1 मिलीग्राम् खनिज 1 ग्राम, नमी 81 ग्राम, फॉस्फोरस 57 मिलीग्राम, प्रोटीन 3 ग्राम, विटामिन ए. विटामिन सी, विटामिन डी और विटामिन के भी पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है।

औषधीय गुण

ग्वार फली में अनेक पोषक तत्व पाए जाते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी हैं। यह भूख बढ़ाने, पाचन सुधारने तथा शरीर में ऊर्जा प्रदान करने में सहायक होती है। इसमें उपस्थित प्रोटीन मांसपेशियों को मजबूत बनाता है। ग्वार फली मधुमेह नियंत्रण, रक्त संचार सुधार और एनीमिया में लाभकारी मानी जाती है। इसके सेवन से आँखों की रोशनी तथा रतौंधी में भी सुधार होता है। यह मरुस्थलीय क्षेत्रों में एक पौष्टिक और औषधीय महत्व वाली सब्जी है।

6. ककोड़ा

ककोड़ा एक बहुउपयोगी सब्जी है। अंग्रेजी में इसे स्पाइन गार्ड और वैज्ञानिक भाषा में मोमोर्डिका डायोइका नाम से जाना जाता है। यह भारतीय मूल की कुकुरबिटेसी परिवार की बहुवर्षीय बेल है। फल हरे रंग का अण्डाकार होता है। इसका पौधा बहुवर्षीय बेल और जड़ कंदीय होने के साथ ही यह स्वभाद में एकलिंगाश्रयी होता है। इसके फलों का उपयोग प्रमुखतः सब्जी में किया जाता है।

पोषक—मूल्य

इसमें नमी 84.19 प्रतिशत, प्रोटीन 3.11 प्रतिशत, वसा 0.66 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 7.70 प्रतिशत, रेशा 2.97 प्रतिशत तथा प्रति 100 ग्राम गूदे में केल्सियम 33 मिग्रा., फास्फोरस 42 मिग्रा, लोहा 4.68 मि.ग्रा, केरोटीन (विटामिन ए) 2.0 माइक्रान, थाईमिन 45.20 माइक्रान, राईबोफलोविन 176 मिग्रा. और नाईयसीन 0.55 मि.ग्राम पाया जाता है। इसी प्रकार एस्कारबिक अम्ल अधिक (275.10 मि.ग्राम 100 ग्राम) तथा आयोडिन 0.70 मि. ग्राम 100ग्राम मात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसका फल पाचन क्रिया को बढ़ाने के साथ ही शर्करा की मात्रा को कम करता है। इसी कारण यह सब्ती औषधीय गुणों से भरपूर है तथा कई रोगों जैसे मधुमेह, अल्सर, पाइल्स, पाचन रोग आदि के उपचार में उपयोग की जाती है।

7. कुंदरु

कुंदरू (कोसीनिया ग्रेण्डिर्स) कद्दू कुल की बहुवर्षीय सब्जी है। राजस्थान के मरु क्षेत्र में कुंदरू की खेती बसंत खरीफ में की जाती है। कुंदरू का पुष्प सफेद रंग का होता है। इसके नर और मादा भाग अलग—अलग एक ही पुष्प पर पाये जाते हैं। इसकी उत्पादन क्षमता बहुत है। फल से सब्जी स्तर पर पहुँचते ही तुड़ाई आवश्यक हो जाती है। विलंब की दशा में फल का रंग गुलाबी हो जाता है।

पोषक—मूल्य

कुन्दरू के फल के खाने योग्य प्रति 100 ग्राम भाग में 93.5 ग्राम नमी, 1.2 ग्राम प्रोटीन, 0.1 ग्राम वसा, 0.5 ग्राम खनिज, 1.6 ग्राम रेशा, 3.1 ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स, 18 किलो कैलोरी ऊर्जा, 40 मि.ग्रा. कैल्सियम, 30 मि.ग्रा. फास्फोरस, 0.38 मि. ग्रा. आयरन, 156 माइक्रोग्राम कैरोटिन, 0.07 मि.ग्रा. थाइमिन, 0.08 मि.ग्रा. रिबोफ्लेविन, 0.07 मि. ग्रा. नियासिन, 18 माइक्रोग्राम फोलिक अम्ल, 15 मि.ग्रा. विटामिन 'सी' पोषक तत्व पाये जाते है।

औषधीय गुण

कुंदरु हमारे प्रतिरक्षा तंत्र या नर्वस सिस्टम को बल प्रदान करता है। यह मस्तिष्क से संबन्धित समस्याओं जैसे एपिलेप्सी और चिंता आदि को सामान्य करने में भी मदद करता है। कुंदरु अल्जाइमर में भी लाभदायक है। विटामिन बी और बीटा कैरोटीन की उच्च मात्रा होने से यह कैंसर जैसी गंभीर बीमारी में भी उपयोगी है। कुंदरु एक प्राकृतिक तरीके से रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने की क्षमता रखती है। यह किडनी में मौजूद पथरी को गलाकर शरीर से बाहर उत्सर्जित कर देता है। कुंदरु में उच्च मात्रा में कैल्शियम भी होता है जो हड्डियों का मजबूती देने के लिए बहुत असरदायक होता है।

पौध-आधारित कीटनाशक : टिकाऊ कृषि, पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षित पौध संरक्षण की प्रभावी रणनीति

हर्षदीप सिंह, डॉ. अशोक कुमार, डॉ. ए. एल. यादव

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ अधिकांश किसान अपनी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर हैं। फसलों को कीटों एवं रोगों से बचाने के लिए वर्षों से रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग किया जा रहा है। प्रारम्भ में इनसे अच्छे परिणाम मिले, लेकिन लगातार एवं अंधाधुंध प्रयोग के कारण अनेक समस्याएँ सामने आने लगीं। कई कीटों और रोगजनकों में दवाओं के प्रति प्रतिरोध विकसित हो गया है, जिससे पहले प्रभावी रहने वाले रसायन अब कम असर दिखा रहे हैं। साथ ही मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है, जल स्रोत प्रदूषित हो रहे हैं और लाभकारी जीवों की संख्या भी घट रही है। ऐसी परिस्थितियों में पौध–आधारित कीटनाशक एक सुरक्षित, सस्ता तथा पर्यावरण–अनुकूल विकल्प बनकर उभरे हैं।

पौध–आधारित कीटनाशक क्या हैं?

पौध–आधारित कीटनाशक वे प्राकृतिक उत्पाद हैं, जो विभिन्न पौधों की पत्तियों, बीजों, छाल, जड़ों, फूलों या आवश्यक तेलों से प्राप्त किए जाते हैं। इनमें ऐसे जैव–सक्रिय यौगिक होते हैं जो कीटों के भोजन, वृद्धि, प्रजनन तथा जीवन चक्र को प्रभावित करते हैं। ये कीटों को मारने के साथ–साथ उन्हें फसल से दूर रखने का भी कार्य करते हैं।

पौध–आधारित कीटनाशकों का महत्व

- पर्यावरण में शीघ्र जैव–अपघटित हो जाते हैं तथा हानिकारक अवशेष नहीं छोड़ते।
- मनुष्य, पशुओं, पक्षियों तथा लाभकारी कीटों पर अपेक्षाकृत कम विषैले होते हैं।
- बहु–घटक क्रिया तंत्र होने के कारण कीटों में प्रतिरोधकता धीरे विकसित होती है।
- जैविक एवं प्राकृतिक खेती के लिए उपयुक्त हैं।
- स्थानीय स्तर पर उपलब्ध पौधों से कम लागत में तैयार किए जा सकते हैं।
- सुरक्षित खाद्य उत्पादन को बढ़ावा देते हैं।

प्रमुख पौध–आधारित कीटनाशक एवं उनका उपयोग

1. नीम– नीम सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला पौध–आधारित कीटनाशक है। इसमें उपस्थित अजादिरैक्टिन कीटों के भोजन, वृद्धि तथा प्रजनन को रोकता है। नीम तेल, नीम खली एवं नीम का अर्क माहू, सफेद मक्खी, जासिड, इल्ली तथा कई अन्य कीटों के नियंत्रण में उपयोगी हैं।
2. करंज– करंज के बीजों से प्राप्त तेल चूसक कीटों, थ्रिप्स, एफिड तथा सफेद मक्खी के नियंत्रण में प्रभावी पाया गया है।
3. लहसुन, अदरक एवं मिर्च का अर्क– इनका उपयोग विशेषकर सब्जियों एवं बागवानी फसलों में किया जाता है। ये अनेक चूसक कीटों को दूर रखने में सहायक होते हैं।
4. यूकेलिप्टस, तुलसी, पुदीना एवं खस के आवश्यक तेल– इनमें जीवाणुरोधी एवं कवकरोधी गुण पाए जाते हैं, जिससे पौध रोगों के प्रबंधन में सहायता मिलती है।

पौध रोग प्रबंधन में भूमिका

पौध–आधारित अर्क अनेक रोगजनकों जैसे फ्यूजेरियम, अल्टरनेरिया, राइजोक्टोनिया, कोलेटोट्राइकम, फाइटोफ्थोरा तथा स्क्लेरोटिनिया के विरुद्ध प्रभावी पाए गए हैं। इनमें उपस्थित जैव–सक्रिय यौगिक रोगजनकों की वृद्धि को रोकते हैं तथा पौधों की प्राकृतिक प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाते हैं। ट्राइकोडर्मा, बैसिलस तथा अन्य जैव–नियंत्रक सूक्ष्मजीवों के साथ इनका संयुक्त उपयोग रोग प्रबंधन को और अधिक प्रभावी बनाता है।

कृषि पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण में लाभ

- मधुमक्खियों एवं अन्य परागणकर्ताओं का संरक्षण होता है।
- मित्र कीट एवं प्राकृतिक शत्रु सुरक्षित रहते हैं।
- मिट्टी के लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बनी रहती है।

पौध रोग विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

- रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता कम होती है।
- सुरक्षित एवं गुणवत्तापूर्ण खाद्य उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।
- मिट्टी, जल एवं वायु प्रदूषण में कमी आती है।

किसानों के लिए उपयोगिता

- इनकी लागत अपेक्षाकृत कम होती है।
- कई पौधों से घर पर भी अर्क तैयार किया जा सकता है।
- बाजार से महंगे रसायनों की खरीद कम करनी पड़ती है।
- खेत की उर्वरता एवं जैव विविधता बनी रहती है।
- फसलों में रासायनिक अवशेष कम होने से बाजार में बेहतर गुणवत्ता प्राप्त होती है।

घरेलू स्तर पर तैयार किए जाने वाले सरल पौध–आधारित घोल

नीम का घोल– लगभग 5 किलोग्राम नीम की पत्तियाँ अथवा 2–3 किलोग्राम नीम की गिरी को पीसकर 10 लीटर पानी में 12–24 घंटे तक भिगो दें। इसके बाद घोल को छानकर आवश्यकता अनुसार पानी मिलाकर फसल पर छिड़काव करें।

लहसुन–मिर्च का अर्क– लहसुन एवं हरी मिर्च को पीसकर पानी में मिलाएँ, छानने के बाद थोड़ा साबुन घोल मिलाकर छिड़काव करें। यह कई चूसक कीटों को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

ध्यान दें– किसी भी घरेलू घोल का प्रयोग स्थानीय कृषि विज्ञान केंद्र अथवा कृषि विभाग की अनुशंसित मात्रा एवं विधि के अनुसार ही करें।

छिड़काव करते समय सावधानियाँ

- छिड़काव प्रातः या सायंकाल करें।
- तेज धूप, वर्षा या तेज हवा के समय छिड़काव न करें।
- अनुशंसित मात्रा का ही प्रयोग करें।
- घोल हमेशा ताजा तैयार करें।
- बिना विशेषज्ञ सलाह के विभिन्न उत्पादों को आपस में न मिलाएँ।

किन फसलों में उपयोगी?

पौध–आधारित कीटनाशकों का उपयोग अनेक फसलों में किया जा सकता है, जैसे

- चना
- गेहूँ
- सरसों
- मूंग एवं उड़द
- टमाटर, मिर्च, बैंगन, भिंडी जैसी सब्जियाँ
- फलदार पौधे

चुनौतियाँ एवं सीमाएँ

- इनका प्रभाव कभी–कभी धीमा या अल्पकालिक होता है।
- संग्रहण एवं भंडारण की अवधि सीमित होती है।
- गुणवत्ता एवं सक्रिय तत्वों का मानकीकरण आवश्यक है।
- किसानों में जागरूकता अभी भी सीमित है।
- बड़े स्तर पर उत्पादन एवं विपणन की आवश्यकता है।

किसानों के लिए सरल संदेश

- हर कीट को देखकर तुरंत रासायनिक कीटनाशक का प्रयोग न करें।
- पहले कीट की सही पहचान करें।
- आर्थिक क्षति स्तर के आधार पर ही नियंत्रण उपाय अपनाएँ।
- पौध–आधारित कीटनाशकों को फसल चक्र, जैव–नियंत्रण एवं अन्य कृषि उपायों के साथ अपनाएँ।
- आवश्यकता होने पर ही अनुशंसित रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग करें।

निष्कर्ष

पौध–आधारित कीटनाशक आधुनिक कृषि में रासायनिक कीटनाशकों का पूर्ण विकल्प नहीं, बल्कि उनका सुरक्षित, टिकाऊ एवं पर्यावरण–अनुकूल पूरक हैं। इनके विवेकपूर्ण उपयोग से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम की जा सकती है, उत्पादन लागत घटाई जा सकती है तथा सुरक्षित खाद्य उत्पादन को बढ़ावा दिया जा सकता है। विशेषकर भारतीय परिस्थितियों में, जहाँ अधिकांश किसान छोटे एवं सीमांत हैं, ये कम लागत वाले और स्थानीय संसाधनों पर आधारित प्रभावी समाधान प्रदान करते हैं। अनुसंधान, किसान प्रशिक्षण, गुणवत्तापूर्ण उत्पादों की उपलब्धता तथा प्रभावी नीतिगत समर्थन के माध्यम से पौध–आधारित कीटनाशकों को मुख्यधारा के पौध संरक्षण कार्यक्रमों में व्यापक रूप से शामिल किया जाना चाहिए।

दलहनी फसलों के रोगों के जैविक नियंत्रण उपाय

सुनील कुमार शर्मा[1], सुमेंर सिह[1], डॉ. बी.डी.एस. नाथावत[2]

परिचय

दलहनी फसलें भारतीय कृषि व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। चना, अरहर, मूंग, उड़द, मसूर तथा मटर जैसी फसलें प्रोटीन का प्रमुख स्रोत होने के साथ–साथ मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दलहनी फसलों की जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके भूमि की उर्वरता बढ़ाते हैं। भारत में दलहनी फसलों का उत्पादन अनेक जैविक एवं अजैविक कारकों से प्रभावित होता है, जिनमें रोग एक प्रमुख समस्या है। दलहनी फसलों में विभिन्न प्रकार के कवकीय, जीवाणुजनित तथा विषाणुजनित रोग पाए जाते हैं। ये रोग फसलों की वृद्धि, विकास एवं उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। रोगों के कारण फसल की गुणवत्ता में कमी आती है तथा किसानों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। लंबे समय तक रोग नियंत्रण के लिए रासायनिक कीटनाशकों एवं फफूंदनाशकों का प्रयोग किया जाता रहा है, लेकिन इनके अत्यधिक उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण, मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की कमी तथा मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए वर्तमान समय में जैविक नियंत्रण को रोग प्रबंधन की एक प्रभावी एवं पर्यावरण–अनुकूल तकनीक के रूप में अपनाया जा रहा है।

जैविक नियंत्रण की अवधारणा

जैविक नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसमें रोगजनक जीवों की वृद्धि एवं प्रसार को नियंत्रित करने के लिए जीवित सूक्ष्मजीवों, प्राकृतिक उत्पादों या जैविक पदार्थों का उपयोग किया जाता है। इस विधि में लाभकारी जीवाणु, कवक, जैविक खाद, पौधों से प्राप्त अर्क तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जाता है। जैविक नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य रोगजनकों की संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे बनाए रखना है। यह विधि प्रकृति के संतुलन को बनाए रखते हुए रोगों का नियंत्रण करती है तथा कृषि को अधिक टिकाऊ बनाती है।

दलहनी फसलों के प्रमुख रोग

दलहनी फसलों में अनेक रोग पाए जाते हैं जिनमें प्रमुख हैं— उकठा रोग, जड़ सड़न रोग, कॉलर रॉट, पाउडरी मिल्ड्यू, एन्थ्रेक्नोज, लीफ स्पॉट, रस्ट, बैक्टीरियल ब्लाइट, पीला मोजेक विषाणु रोग इन रोगों के कारण पौधों की वृद्धि रुक जाती है, पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं तथा उत्पादन में भारी कमी आ सकती है।

जैविक नियंत्रण का सिद्धांत

जैविक नियंत्रण कई वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। लाभकारी सूक्ष्मजीव रोगजनकों को विभिन्न तरीकों से नियंत्रित करते हैं।

1. प्रतिस्पर्धा – लाभकारी सूक्ष्मजीव मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों तथा स्थान के लिए रोगजनकों से प्रतिस्पर्धा करते हैं। इससे रोगजनकों को पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता और उनकी वृद्धि रुक जाती है।

2. परजीविता – कुछ जैव नियंत्रण एजेंट सीधे रोगजनक कवकों पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर देते हैं। यह प्रक्रिया परजीविता कहलाती है।

3. प्रतिजैविक उत्पादन – कई लाभकारी जीवाणु एवं कवक ऐसे रसायन उत्पन्न करते हैं जो रोगजनकों की वृद्धि को रोकते हैं। इन्हें प्रतिजैविक पदार्थ कहा जाता है।

4. प्रतिरोधक क्षमता का विकास– कुछ जैव नियंत्रण एजेंट पौधों में रोगों के प्रति प्राकृतिक प्रतिरोधक क्षमता विकसित करते हैं। इससे पौधे रोगों का सामना बेहतर ढंग से कर पाते हैं।

जैविक नियंत्रण एजेंट

ट्राइकोडर्मा– ट्राइकोडर्मा एक अत्यंत प्रभावी लाभकारी कवक है। यह मिट्टी में रहने वाले अनेक रोगजनक कवकों को नियंत्रित करता है। ट्राइकोडर्मा रोगजनकों की कोशिका भित्ति को नष्ट करके उनकी वृद्धि रोकता है। इसके प्रयोग से उकठा रोग, जड़ सड़न एवं कॉलर रॉट जैसी समस्याओं में उल्लेखनीय कमी आती है।

स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस– यह एक लाभकारी जीवाणु है जो पौधों की जड़ों के आसपास सक्रिय रहता है। यह रोगजनकों को दबाने के साथ–साथ पौधों की वृद्धि को भी बढ़ावा देता है। स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस विभिन्न प्रकार के फफूंदजनित रोगों के नियंत्रण में उपयोगी माना जाता है।

बैसिलस सब्टिलिस– यह जीवाणु

1 शोधार्थी, पादप रोग विज्ञान, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय - बीकानेर 2. सहायक आचार्य, पादप रोग विज्ञान, कृषि अनुसंधान संस्थान, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय - बीकानेर

प्राकृतिक प्रतिजैविक पदार्थ उत्पन्न करता है जो रोगजनक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को रोकते हैं। यह पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है।

नीम आधारित जैविक नियंत्रण– नीम भारतीय कृषि में एक महत्वपूर्ण जैविक संसाधन है। नीम की पत्तियाँ, बीज, तेल तथा खली का उपयोग रोग एवं कीट नियंत्रण में किया जाता है। नीम में उपस्थित विभिन्न जैव सक्रिय यौगिक रोगजनकों की वृद्धि को रोकते हैं तथा पौधों की सुरक्षा बढ़ाते हैं। नीम आधारित उत्पादों का नियमित उपयोग करने से मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है तथा रोगों का प्रकोप कम होता है।

जैविक खादों की भूमिका– जैविक खादें जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट तथा वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाती हैं। ये सूक्ष्मजीव रोगजनकों को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं। जैविक खादों के उपयोग से मिट्टी की संरचना, जलधारण क्षमता तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार होता है। वर्मी कम्पोस्ट विशेष रूप से लाभकारी माना जाता है क्योंकि इसमें अनेक प्रकार के उपयोगी सूक्ष्मजीव एवं पौध वृद्धि प्रोत्साहक पदार्थ पाए जाते हैं।

बीजोपचार का महत्व– बीजोपचार रोग प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण चरण है। बीजों को ट्राइकोडर्मा, स्यूडोमोनास या अन्य जैव नियंत्रण एजेंटों से उपचारित करने पर बीजजनित एवं मृदा जनित रोगों का प्रभाव कम हो जाता है। इससे अंकुरण प्रतिशत बढ़ता है तथा पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है।

फसल चक्र का महत्व– लगातार एक ही फसल उगाने से रोगजनकों की संख्या बढ़ जाती है। फसल चक्र अपनाने से रोगजनकों का जीवन चक्र टूट जाता है तथा रोगों की तीव्रता कम हो जाती है। दलहनी फसलों के साथ अनाज या तिलहनी फसलों का चक्र अपनाना लाभदायक माना जाता है।

रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग– रोग प्रतिरोधी किस्में जैविक रोग प्रबंधन का महत्वपूर्ण आधार हैं। ऐसी किस्मों में रोगों के प्रति प्राकृतिक प्रतिरोध होता है। इनके उपयोग से रोग प्रकोप कम होता है तथा उत्पादन स्थिर बना रहता है।

खेत स्वच्छता और सांस्कृतिक उपाय– खेत में रोगग्रस्त पौधों के अवशेष रोगजनकों के लिए आश्रय स्थल का कार्य करते हैं। इसलिए संक्रमित पौधों को हटाना, खेत की सफाई बनाए रखना तथा संतुलित सिंचाई एवं पोषण प्रबंधन अपनाना आवश्यक है। ये उपाय रोगों के प्रसार को कम करने में सहायक होते हैं।

जैविक नियंत्रण के लाभ

- पर्यावरण के लिए सुरक्षित।
- मानव स्वास्थ्य पर कोई दुष्प्रभाव नहीं।
- मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि।
- लाभकारी जीवों का संरक्षण।
- उत्पादन लागत में कमी।
- टिकाऊ कृषि प्रणाली को बढ़ावा।
- रासायनिक अवशेषों से मुक्त उत्पादन।

निष्कर्ष

दलहनी फसलों में रोगों का प्रभावी प्रबंधन कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए आवश्यक है। जैविक नियंत्रण एक सुरक्षित, टिकाऊ तथा पर्यावरण–अनुकूल तकनीक है जो रोगजनकों को नियंत्रित करने के साथ–साथ मिट्टी एवं पौधों के स्वास्थ्य में भी सुधार करती है। ट्राइकोडर्मा, स्यूडोमोनास, बैसिलस, नीम उत्पाद, जैविक खादें तथा फसल चक्र जैसे उपाय दलहनी फसलों के रोग प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान समय में सतत कृषि विकास के लिए जैविक नियंत्रण उपायों को व्यापक रूप से अपनाना आवश्यक है।

पत्रिका में प्रकाशित आलेख/ विचार लेखकों के अपने हैं।

प्रगति : किसान की प्रगति से विकसित भारत की ओर एक सशक्त कदम

डॉ. सीमा त्यागी[1] एवं सृष्टि कमेडिया[2]

"जब खेत समृद्ध होंगे, तभी गांव खुशहाल होंगे और जब गांव आगे बढ़ेंगे तभी भारत विकसित बनेगा।"

इसी विचार को साकार करने के लिए भारत सरकार ने केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री **श्री शिवराज सिंह चौहान** के नेतृत्व में **"प्रगति"** पहल की शुरुआत की है। यह पहल केवल एक सरकारी योजना नहीं, बल्कि भारतीय कृषि को आधुनिक, लाभदायक और आत्मनिर्भर बनाने का एक व्यापक अभियान है। इसका उद्देश्य छोटे और सीमांत किसानों तक आधुनिक कृषि सेवाएँ पहुँचाना, ग्रामीण युवाओं को कृषि उद्यमी बनाना तथा खेती को विज्ञान, तकनीक और बाजार से जोड़कर किसानों की आय में स्थायी वृद्धि करना है।

भारत की लगभग आधी से अधिक आबादी आज भी कृषि पर निर्भर है। इसके बावजूद छोटे किसानों को समय पर सही सलाह, उन्नत बीज, आधुनिक कृषि यंत्र, मिट्टी परीक्षण, वित्तीय सहायता और बाजार की उचित जानकारी नहीं मिल पाती। परिणामस्वरूप उन्हें अधिक मेहनत के बाद भी अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। इन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए प्रगति पहल की शुरुआत की गई है ताकि किसान अपने गांव में ही कृषि विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त कर सकें और आधुनिक खेती की ओर आगे बढ़ सकें।

इस महत्वाकांक्षी कार्यक्रम के अंतर्गत देशभर में **20,000 कृषि–उद्यमियों** का एक मजबूत नेटवर्क तैयार किया जाएगा। ये कृषि–उद्यमी लगभग **20 लाख छोटे और सीमांत किसानों** तक पहुंचकर उन्हें खेती से जुड़ी हर आवश्यक जानकारी और सेवाएँ उपलब्ध कराएंगे। किसानों को मृदा परीक्षण, उन्नत बीजों का चयन, आधुनिक कृषि मशीनों का उपयोग, फसल संरक्षण, डिजिटल कृषि सलाह, बैंक ऋण, फसल बीमा, बाजार से जुड़ाव तथा वैकल्पिक आय के स्रोतों के बारे में मार्गदर्शन दिया जाएगा। इससे किसानों को बार–बार सरकारी कार्यालयों या शहरों के चक्कर लगाने की आवश्यकता नहीं होगी और उन्हें अपने गांव में ही विशेषज्ञ सहायता उपलब्ध हो सकेगी।

प्रगति पहल की शुरुआत देश के प्रमुख कृषि राज्यों **मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, असम और झारखंड** से की गई है। इन राज्यों में लाखों छोटे किसान रहते हैं, जिन्हें इस पहल से प्रत्यक्ष लाभ मिलने की संभावना है। भविष्य में इस मॉडल को देश के अन्य राज्यों में भी विस्तारित किया जाएगा ताकि अधिक से अधिक किसान आधुनिक कृषि सेवाओं से जुड़ सकें।

इस कार्यक्रम की एक विशेषता यह भी है कि इसमें केवल खेती पर ही नहीं, बल्कि ग्रामीण रोजगार और कृषि–उद्यमिता पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। गांवों के शिक्षित युवाओं को प्रशिक्षण देकर कृषि उद्यमी बनाया जाएगा, जिससे वे अपने क्षेत्र के किसानों की सहायता करते हुए स्वयं भी रोजगार प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही, **महिला कृषि–उद्यमियों** को भी विशेष प्राथमिकता दी जाएगी ताकि ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी बढ़े और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें।

प्रगति पहल खेती को **जलवायु परिवर्तन के अनुकूल और पुनर्योजी कृषि** की दिशा में भी आगे बढ़ाएगी। किसानों को ऐसी खेती अपनाने के लिए प्रेरित किया जाएगा जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहे, पानी का संरक्षण हो, रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम हो तथा प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग किया जा सके। इससे खेती अधिक टिकाऊ बनेगी और आने वाली पीढ़ियों के लिए भी कृषि भूमि सुरक्षित रहेगी।

इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए भारत सरकार के साथ कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ भी जुड़ी हैं। इनमें **पेप्सीको फाउंडेशन, एसबीआई फाउंडेशन, गेट्स फाउंडेशन, आईडीएच, हेफर इंटरनेशनल, पर्यावरण रक्षा कोष, सस्टेनेबल एग्रीकल्चर फॉर इंडिया एंड अफ्रीका, एग्री एंटरप्रेन्योर ग्रोथ फाउंडेशन तथा ट्रांसफॉर्म रूरल इंडिया फाउंडेशन** जैसी संस्थाएँ शामिल हैं। ये सभी संस्थाएँ किसानों और कृषि उद्यमियों को आधुनिक खेती का प्रशिक्षण, नई तकनीकों की जानकारी, डिजिटल सेवाओं का उपयोग, बैंकिंग एवं वित्तीय सहायता तक पहुँच तथा अपनी उपज को बेहतर बाजार दिलाने में सहयोग करेंगी। इन संस्थाओं के सहयोग से किसानों को आधुनिक कृषि अपनाने और अपनी आय बढ़ाने का बेहतर अवसर मिलेगा।

प्रगति पहल का लक्ष्य केवल खेती की उपज बढ़ाना नहीं है, बल्कि किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि करना भी है। इस कार्यक्रम के माध्यम से धान, गेहूं, मक्का और अन्य प्रमुख फसलों की उत्पादकता बढ़ाने, उत्पादन लागत कम करने, किसानों की आय में लगभग **30 प्रतिशत तक वृद्धि** करने तथा कम से कम **20 प्रतिशत किसानों** को पुनर्योजी कृषि पद्धतियाँ अपनाने के लिए प्रेरित करने का प्रयास किया जाएगा। इससे भारतीय कृषि अधिक प्रतिस्पर्धी, लाभकारी और पर्यावरण के अनुकूल बन सकेगी।

आज के समय में खेती केवल परंपरागत अनुभव से नहीं, बल्कि **ज्ञान, विज्ञान और तकनीक** के साथ आगे बढ़ रही है। ऐसे में प्रगति किसानों के लिए एक नई आशा और नए अवसरों का द्वार खोलती है। यह पहल किसानों को आधुनिक तकनीक, वैज्ञानिक सलाह, वित्तीय सहायता और बेहतर बाजार व्यवस्था से जोड़कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने का कार्य करेगी। यदि इस योजना का प्रभावी क्रियान्वयन होता है, तो यह केवल किसानों की आय ही नहीं बढ़ाएगी, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी नई मजबूती प्रदान करेगी।

निष्कर्ष

प्रगति वास्तव में भारतीय कृषि के भविष्य को नई दिशा देने वाली एक दूरदर्शी पहल है। यह योजना किसानों को केवल सहायता प्रदान करने तक सीमित नहीं है, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर, तकनीक–सक्षम, वैज्ञानिक सोच वाला और आर्थिक रूप से सशक्त बनाने का संकल्प है। जब किसान आधुनिक तकनीक, सही मार्गदर्शन और मजबूत बाजार से जुड़ेगा, तब खेती लाभ का व्यवसाय बनेगी, गांव समृद्ध होंगे और भारत विकसित राष्ट्र बनने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ेगा।

बदलते मानसून में राजस्थान की खेती : चुनौतियाँ और समाधान

रोहित मीना[1], आशीष मीना[2], मोनिका मीना[2], सिमरन मीना[2], हरकेश मीना[3]

राजस्थान को सदियों से सीमित वर्षा और शुष्क जलवायु वाले राज्य के रूप में जाना जाता रहा है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में मानसून का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। कभी लंबे समय तक सूखा पड़ता है, तो कभी कुछ ही दिनों में अत्यधिक वर्षा से खेत जलमग्न हो जाते हैं। वर्षा का समय, मात्रा और वितरण लगातार अनिश्चित होता जा रहा है। यह बदलता मानसून केवल मौसम का बदलाव नहीं है, बल्कि किसानों की आजीविका, कृषि उत्पादन और खाद्य सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है।

खरीफ मौसम की फसलें जैसे बाजरा, मूंग, उड़द, सोयाबीन, मक्का, तिल और कपास मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर रहती हैं। समय पर वर्षा न होने पर बुवाई प्रभावित होती है, जबकि अत्यधिक वर्षा होने पर खेतों में जलभराव, पोषक तत्वों का बहाव तथा जड़ सड़न जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसके अलावा अधिक नमी के कारण कीट एवं रोगों का प्रकोप भी बढ़ जाता है, जिससे उत्पादन और गुणवत्ता दोनों प्रभावित होते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि, अनियमित वर्षा तथा चरम मौसम की घटनाएँ अब सामान्य होती जा रही हैं। इससे किसानों के लिए खेती का जोखिम लगातार बढ़ रहा है। ऐसे समय में पारंपरिक कृषि पद्धतियों के साथ आधुनिक एवं वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाना आवश्यक हो गया है।

इस चुनौती से निपटने के लिए सबसे पहले जल संरक्षण को प्राथमिकता देनी होगी। खेत तालाब, फार्म पॉन्ड, मेड़बंदी, कंटूर बंडिंग तथा वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकों से वर्षा के जल का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। इससे सूखे की स्थिति में सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध रहेगा और भूजल स्तर भी बेहतर होगा। दूसरा महत्वपूर्ण उपाय जलवायु–स्मार्ट कृषि को अपनाना है। कम अवधि में पकने वाली, सूखा एवं ताप सहनशील फसल किस्मों का चयन किसानों के जोखिम को कम कर सकता है। साथ ही फसल विविधीकरण अपनाकर किसान केवल एक फसल पर निर्भर रहने के बजाय दालों, तिलहनों, मोटे अनाज एवं बागवानी फसलों को शामिल कर अपनी आय को अधिक सुरक्षित बना सकते हैं।

बदलते मानसून के दौर में मिट्टी के स्वास्थ्य का संरक्षण भी अत्यंत आवश्यक है। मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित उर्वरक प्रबंधन, जैव उर्वरकों का उपयोग तथा जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ाने से मिट्टी की जल धारण क्षमता में सुधार होता है। इससे फसलें सूखे और अधिक वर्षा दोनों परिस्थितियों का बेहतर सामना कर सकती हैं।

इसके साथ ही किसानों को मौसम आधारित कृषि सलाह का नियमित उपयोग करना चाहिए। भारतीय मौसम विभाग (IMD), कृषि विज्ञान केंद्र (KVK), ICAR तथा विभिन्न कृषि मोबाइल एप्स द्वारा जारी मौसम पूर्वानुमान और कृषि परामर्श के आधार पर बुवाई, सिंचाई, उर्वरक एवं कीट प्रबंधन संबंधी निर्णय अधिक प्रभावी ढंग से लिए जा सकते हैं।

आज के समय में ड्रोन तकनीक, सटीक कृषि (Precision Farming), सेंसर आधारित सिंचाई, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) तथा रिमोट सेंसिंग जैसी आधुनिक तकनीकें भी किसानों के लिए उपयोगी साबित हो रही हैं। इन तकनीकों के माध्यम से कम लागत में बेहतर उत्पादन प्राप्त करने के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी संभव है।

राजस्थान जैसे राज्य में श्रीअन्न (मोटे अनाज) जैसे बाजरा, ज्वार और रागी की खेती को बढ़ावा देना भी समय की आवश्यकता है। ये फसलें कम पानी में अच्छी पैदावार देती हैं, पोषण से भरपूर होती हैं और बदलती जलवायु के प्रति अधिक अनुकूल हैं। इसलिए इन्हें भविष्य की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का आधार माना जा रहा है।

अंततः, बदलता मानसून राजस्थान की कृषि के सामने अनेक चुनौतियाँ लेकर आया है, लेकिन वैज्ञानिक तकनीकों, जल संरक्षण, जलवायु–स्मार्ट कृषि, बेहतर बीज, मौसम आधारित प्रबंधन और किसानों की जागरूकता के माध्यम से इन चुनौतियों को अवसर में बदला जा सकता है। यदि सरकार, वैज्ञानिक संस्थान, कृषि विज्ञान केंद्र और किसान मिलकर कार्य करें, तो राजस्थान की कृषि न केवल जलवायु परिवर्तन का सफलतापूर्वक सामना कर सकेगी, बल्कि अधिक टिकाऊ, लाभकारी और भविष्य के लिए सुरक्षित भी बन सकेगी। बदलते मौसम के साथ बदलती खेती ही भविष्य की समृद्ध और सुरक्षित कृषि का आधार है।

[1]विद्यावाचस्पति शोधार्थी, आनुवंशिकी और पादप प्रजनन विज्ञान, कृषि महाविद्यालय, जोधपुर. 342304 (राज.) [2]स्नातकोत्तर, उद्यान विज्ञान, कृषि महाविद्यालय, जोधपुर. 342304 (राज.) [3] स्नातकोत्तर, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, कृषि महाविद्यालय, जोधपुर. 342304 (राज.)

मृदा स्वास्थ्य एवं जल प्रबंधन: सतत कृषि की आधारशिला

सरिता चौधरी[1], राम हरि मीणा[1] और सुरेश चौधरी[2]

मृदा और जल, यह दो महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं जिन पर हमारा कृषि और पर्यावरण पूरी तरह निर्भर है। इनका संरक्षण आज के समय में अधिक महत्वपूर्ण हो गया है, क्योंकि तेजी से बदलती जलवायु और अत्यधिक दोहन के कारण इन संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा में गिरावट आई है । सही प्रयासों से न केवल इन संसाधनों को बचाया जा सकता है बल्कि दीर्घकालिक कृषि और सतत विकास को भी सुनिश्चित किया जा सकता है

मृदा संरक्षण का महत्व और उपाय

मृदा संरक्षण मृदा का संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि खेती का भविष्य मिट्टी की गुणवत्ता और स्वास्थ्य पर निर्भर करता हैं। मृदा न केवल फसलों को पोषण प्रदान करती है, बल्कि यह पानी को संचित करने जलवायु को संतुलित करने और पर्यावरण को स्वस्थ बनाए रखने में भी योगदान देती है। मिट्टी के कटाव शरण और जैविक घटकों की कमी से कृषि उत्पादन पर नकारात्मक असर पड़ता है इसके संरक्षण के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपाय है;

1. आच्छादित फसल:

कवर फसलें मिट्टी को कटाव से बचाती हैं एवं यह मृदा में जैविक तत्वों की मात्रा बढ़ाने में सहायक होती हैं जब खेत में मुख्य फसल नहीं होती तब ग्वार, बरसीम जैसी फसलों को उगाना मृदा शरण को रोकने में सहायक होती है यह फसलें मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है एवं इसकी उर्वरता को बनाए रखती है

2. मल्चिंग:

मल्चिंग का अर्थ मिट्टी की सतह को पुआल, घास व पत्तों जैसे जैविक तत्वों से ढक देना इससे मिट्टी में नमी बनी रहती है एवं इसके कटाव को रोकता है यह खरपतवार को रोकने के साथ–साथ मिट्टी का तापमान भी संतुलित रखती है।

3. फसल चक्र:

फसल चक्र मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में एक कारगर उपाय है। एक ही प्रकार की फसल को बार–बार उगने से मृदा में पोषक तत्व कम हो जाते हैं। अलग–अलग फसले उगने से मिट्टी में विभिन्न पोषक तत्व पुनः स्थापित होते हैं जिससे मृदा स्वास्थ्य बेहतर होता है।

4. जैविक खाद और कंपोस्ट का उपयोग:

रासायनिक खादों की बजाय जैविक खाद का उपयोग मृदा को प्रदूषण से मुक्त रखता है। जैविक खाद और कंपोस्ट से मिट्टी में जैविक तत्व की वृद्धि होती है जो लंबे समय तक इसकी उर्वरता बनाए रखने में सहायक होते हैं ।

5. संयमित सिंचाई प्रणाली:

बूंद बूंद और फव्वारा विधि जैसी संयमित सिंचाई प्रणालियों से न केवल पानी की बचत होती है बल्कि इससे मिट्टी का कटाव भी कम होता है यह सुनिश्चित करता है कि मिट्टी में नमी आवश्यकता अनुसार बनी रहे और पानी के अत्यधिक बहने से बचाव हो।

(अ) मल्चिंग

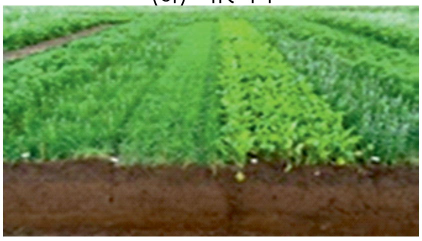

(ब) आच्छादित फसल

जल संरक्षण का महत्व और उपाय

जल संरक्षण केवल पानी की बचत ही नहीं, बल्कि फसल उत्पादन और पर्यावरण संतुलन के लिए भी आवश्यक है हमारे पास सीमित मात्रा में जल संसाधन है जिन्हें संभलकर उपयोग करना एक बेहतर भविष्य की कुंजी है कुछ प्रमुख उपाय जो इस प्रकार है

1. सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली:

ड्रिप और स्प्रिंकलर जैसी संयमित सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों से फसलों को जरूरत के अनुसार पानी मिलता है इस प्रणाली से पानी का अपव्यय कम होता है और मिट्टी में नमी संतुलित बनी रहती है

2. जल संचय:

वर्षा के पानी को संचित करना जल संरक्षण का एक पुराना परंतु बहुत ही कारगर उपाय है घरों, खेतों और तालाबों में वर्षा जल को जमा करके सिंचाई के लिए उपयोग किया जा सकता

1. मृदा विज्ञान विभाग, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर–313001
2. मृदा विज्ञान विभाग, सुरेश ज्ञान विहार विश्वविद्यालय, जयपुर–302017

है जिससे भूजल स्तर भी संतुलित रहता है।

3. बांध और तालाब निर्माण:

बांध और तालाब बनाकर वर्षा जल को इकट्ठा करना एवं बाद में सिंचाई के लिए इस्तेमाल करना जल संरक्षण का एक प्रभावी तरीका है इससे नए केवल सिंचाई की समस्या हल होती है बल्कि जल स्तर में भी सुधार होता है।

4. मिट्टी में नमी बनाए रखने के लिए पौधारोपण:

पेड़ और झाड़ियां मिट्टी में नमी बनाए रखने में सहायक होती है इससे न केवल भूजल स्तर बढ़ता है बल्कि यह वाष्पीकरण की गति को भी कम करती है जिससे जल संरक्षण में मदद मिलती है ।

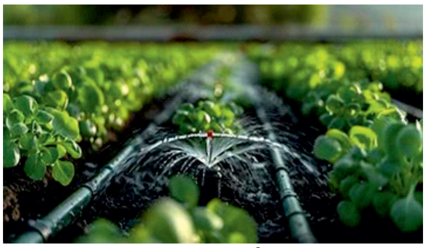

(अ) सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली

(ब) बांध और तालाब निर्माण

जल संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण उपाय

- स्थानीय स्तर पर प्रयास : पानी के संरक्षण के लिए विभिन्न स्तरों पर पहल जरूरी है। जल संरक्षण के प्रयास या वर्षा जल संचय के प्रयास स्थानीय स्तर पर होने चाहिए और स्थानीय प्रयासों के बिना जल संरक्षण के प्रयास व्यापक अभियान का रूप नहीं ले सकेंगे।
- पानी के पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग पर हो जोरः जो पानी की बचत और संरक्षण के लिए पानी के पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग को अपनाया जाना चाहिए वर्तमान में ऐसे प्रयास भारत में कम ही है शहरी क्षेत्र में लगभग 37 प्रतिशत घरेलू सीवेज जल का ट्रीटमेंट किया जाता है और ट्रीटमेंट के तरीकों में प्राकृतिक उपचार प्रणाली उदाहरण के लिए वेटलैंड्स एरोबिक सिस्टम व एनारोबिक सिस्टम आदि शामिल है इजराइल में लगभग 80 प्रतिशत घरेलू सीवेज जल का ट्रीटमेंट किया जा सकता है और उसे उन्हें कृषि और औद्योगिक उपयोग के लिए इस्तेमाल किया जाता है इस तरह के पुनः उपयोग से कुछ उद्योगों में भारतीय पर्यावरण नियामक द्वारा अनिवार्य किए गए जीरो लिक्विड डिसचार्ज प्राप्त करने में मदद मिलती है।
- विभिन्न हित धारकों का एक साथ आना है जरूरीः जल संरक्षण को एक बड़ा अभियान बनाने के लिए विभिन्न हित धारकों की भागीदारी की आवश्यकता है गैर सरकारी संगठनों स्थानीय निकायों और व्यक्तियों को स्थानीय पंचायत के साथ गहनता से शामिल किया जाना चाहिए जल संरक्षण के लाभ को समझने के लिए विभिन्न हित धारकों की जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है
- जल संसाधनों के प्रबंधन पर दिया जाए जोर जल प्रशिक्षण कार्यक्रमों के जरिए विभिन्न जल प्रबंधन को और हित धारकों की क्षमता बढ़ाने के आवश्यकता है। जल प्रबंधन अवधारणा एक अपेक्षाकृत हालिया अवधारणा है जिसका मतलब जल संसाधनों के प्रबंधन से है और जल प्रबंधन को और नीति निर्माता के जल प्रबंधन प्रशिक्षण के लिए कहती है अपनी एक बुनियादी मानव अधिकार है।मानव की जल आवश्यकता को पूरा करने के लिए पानी की बचत और संरक्षण की जरूरत है।

मिट्टी और जल संरक्षण का महत्व

मिट्टी और जल संरक्षण के उपाय अपना कर हम नए केवल फसलों की गुणवत्ता और उत्पादन को बढ़ा सकते हैं। बल्कि यह हमारे पर्यावरण और भावी पीढीयों के लिए अत्यधिक लाभकारी है। इसके अलावा इन उपायों से किसानों के आर्थिक स्थिति भी मजबूत होती है। क्योंकि कम पानी और स्वस्थ मिट्टी में फसल पैदावार और गुणवत्ता बेहतर होती है।

निष्कर्ष

मिट्टी और जल संरक्षण का महत्व समझकर हम एक स्थाई और समृद्ध भविष्य की ओर बढ़ सकते हैं। कृषि पर्यावरण और समाज के संतुलित विकास के लिए इन संसाधनों का उचित उपयोग और संरक्षण अत्यंत आवश्यक है । यदि हम सभी मिलकर मिट्टी और जल संरक्षण के इन उपायों को अपनाए तो यह नए केवल कृषि क्षेत्र बल्कि पूरे समाज के विकास में एक अहम भूमिका निभाएगा ।

कृषि तकनीकों के प्रसार में कृषि आदान विक्रेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका

एस के मीना[1], ओमप्रकाश मीना[2] और मामराज गुर्जर[1]

कृषि क्षेत्र में निरंतर विकसित हो रही नई तकनीकों, उन्नत बीजों, जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, कृषि यंत्रों तथा डिजिटल कृषि सेवाओं का वास्तविक लाभ तभी संभव है जब ये तकनीकें समय पर किसानों तक पहुँचें और उनका सही उपयोग हो। इस प्रक्रिया में कृषि आदान विक्रेता अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे केवल कृषि सामग्री के विक्रेता नहीं हैं, बल्कि किसानों और वैज्ञानिक संस्थानों के बीच एक प्रभावी सेतु के रूप में कार्य करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों का इनसे नियमित संपर्क होने के कारण वे कृषि तकनीकों के प्रसार, जागरूकता निर्माण, तकनीकी सलाह तथा कृषि नवाचारों को अपनाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ आज भी बड़ी आबादी की आजीविका कृषि पर निर्भर है। बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, सीमित प्राकृतिक संसाधनों और खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों के बीच कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए नई तकनीकों का विकास लगातार हो रहा है। कृषि विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थान तथा विभिन्न सरकारी एवं निजी संगठन किसानों के लिए उन्नत तकनीकों का विकास करते हैं, किंतु इन तकनीकों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वे कितनी तेजी और प्रभावशीलता से किसानों तक पहुँचती हैं।

कृषि तकनीकी हस्तांतरण की इस प्रक्रिया में कृषि आदान विक्रेता एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में उभरे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश किसान बीज, उर्वरक, कीटनाशक एवं अन्य कृषि सामग्री खरीदने के लिए नियमित रूप से कृषि आदान विक्रेताओं के संपर्क में रहते हैं। यही कारण है कि आज कृषि आदान विक्रेता केवल उत्पाद विक्रेता नहीं, बल्कि कृषि सलाहकार, सूचना प्रदाता और तकनीकी मार्गदर्शक के रूप में भी अपनी पहचान बना चुके हैं।

कृषि आदान विक्रेता : एक परिचय

कृषि आदान विक्रेता वे व्यक्ति, संस्थान अथवा प्रतिष्ठान हैं जो किसानों को बीज, उर्वरक, कीटनाशक, जैव उर्वरक, सूक्ष्म पोषक तत्व, कृषि यंत्र, पशु आहार तथा अन्य कृषि संबंधी उत्पाद उपलब्ध कराते हैं। वर्तमान समय में कृषि व्यवसाय के विस्तार के साथ इनकी भूमिका भी व्यापक हुई है। कई कृषि आदान विक्रेता किसानों को फसल प्रबंधन, पोषण प्रबंधन, रोग एवं कीट नियंत्रण तथा बाजार संबंधी जानकारी भी प्रदान करते हैं।

ग्रामीण भारत में कृषि आदान विक्रेता अक्सर किसानों के लिए सबसे सुलभ और विश्वसनीय सूचना स्रोत होते हैं। किसान अपनी फसल संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए सबसे पहले इन्हीं से संपर्क करते हैं।

कृषि तकनीकों के प्रसार में कृषि आदान विक्रेताओं की भूमिका

1. कृषि अनुसंधान और किसानों के बीच सेतु

कृषि अनुसंधान संस्थानों द्वारा विकसित नई तकनीकों को किसानों तक पहुँचाने में कृषि आदान विक्रेता महत्वपूर्ण माध्यम बनते हैं। नई किस्मों, उन्नत बीजों, जैव उर्वरकों, सूक्ष्म पोषक तत्वों तथा आधुनिक कृषि उत्पादों की जानकारी सबसे पहले इन्हीं के माध्यम से किसानों तक पहुँचती है।

जब कोई नई तकनीक या उत्पाद बाजार में आता है, तो विक्रेता किसानों को उसके लाभ, उपयोग विधि और संभावित परिणामों के बारे में जानकारी देकर उसे अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं।

2. किसानों को तकनीकी परामर्श प्रदान करना

आज अधिकांश किसान फसल में आने वाली समस्याओं जैसे

- ❖ कीट एवं रोग प्रकोप
- ❖ पोषक तत्वों की कमी
- ❖ खरपतवार नियंत्रण
- ❖ सिंचाई प्रबंधन
- ❖ पौध वृद्धि संबंधी समस्याएँके

समाधान हेतु कृषि आदान विक्रेताओं से सलाह लेते हैं। विक्रेता अपने अनुभव तथा उपलब्ध तकनीकी जानकारी के आधार पर किसानों को उचित सलाह प्रदान करते हैं।

कई बार यह परामर्श किसानों को त्वरित निर्णय लेने में सहायता करता है और संभावित उत्पादन हानि को कम करता है।

3. नवीन तकनीकों को अपनाने में सहायता

किसानों द्वारा नई तकनीकों को अपनाने में अक्सर संकोच देखा जाता है। ऐसे में कृषि आदान विक्रेता किसानों को तकनीक के लाभों, लागत और उपयोग विधि के बारे में समझाकर उनकी शंकाओं का समाधान करते हैं।

उदाहरण के लिए

- ❖ उन्नत बीजों का उपयोग
- ❖ ड्रिप सिंचाई प्रणाली
- ❖ जैविक उत्पादों का प्रयोग
- ❖ बायो–स्टिमुलेंट्स का उपयोग
- ❖ एकीकृत पोषण प्रबंधन
- ❖ एकीकृत कीट प्रबंधन जैसी

तकनीकों के प्रचार–प्रसार में कृषि आदान विक्रेताओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

---

1 भाकृअनुप–कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)
2 भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान जोधपुर (राजस्थान)

4. प्रदर्शन एवं किसान प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन

कई निजी कंपनियाँ तथा सरकारी संस्थाएँ कृषि आदान विक्रेताओं के सहयोग से–

- ❖ किसान गोष्ठियाँ
- ❖ प्रशिक्षण कार्यक्रम
- ❖ खेत प्रदर्शन
- ❖ फसल दिवस
- ❖ जागरूकता अभियान आयोजित करती हैं।

इन कार्यक्रमों के माध्यम से किसान नई तकनीकों के परिणामों को प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं, जिससे उनमें तकनीक को अपनाने का विश्वास बढ़ता है।

5. कृषि विस्तार तंत्र को मजबूती प्रदान करना

भारत जैसे विशाल देश में कृषि विस्तार अधिकारियों की संख्या सीमित है। ऐसे में प्रत्येक किसान तक नियमित रूप से वैज्ञानिक जानकारी पहुँचाना चुनौतीपूर्ण कार्य है।

कृषि आदान विक्रेता इस कमी को काफी हद तक पूरा करते हैं। वे कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) और किसानों के बीच संपर्क स्थापित कर तकनीकी संदेशों के व्यापक प्रसार में सहायता करते हैं।

इस प्रकार वे कृषि विस्तार प्रणाली के पूरक के रूप में कार्य करते हैं।

6. डिजिटल कृषि के प्रचार में योगदान

वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र तेजी से डिजिटल हो रहा है। कृषि आदान विक्रेता किसानों को निम्नलिखित डिजिटल सेवाओं से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैंकृ

- ❖ मौसम पूर्वानुमान सेवाएँ
- ❖ मोबाइल आधारित कृषि परामर्श
- ❖ ऑनलाइन बीज एवं उर्वरक बुकिंग
- ❖ ई–मार्केट प्लेटफॉर्म
- ❖ ड्रोन आधारित कृषि सेवाएँ
- ❖ कृषि मोबाइल एप्सइससे किसानों को समय पर वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त हो रही है तथा कृषि निर्णयों की गुणवत्ता में सुधार हो रहा है।

7. बाजार आधारित कृषि को बढ़ावा

कृषि आदान विक्रेता किसानों को बाजार में उपलब्ध नवीन उत्पादों, उनकी कीमतों तथा मांग की जानकारी प्रदान करते हैं। इससे किसान फसल चयन, निवेश और उत्पादन रणनीति के संबंध में बेहतर निर्णय ले सकते हैं।

कृषि आदान विक्रेताओं की विशेषताएँ

कृषि तकनीकों के प्रसार में उनकी सफलता के पीछे कई कारण हैं

- ❖ किसानों से प्रतिदिन संपर्क
- ❖ ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक उपलब्धता
- ❖ स्थानीय कृषि परिस्थितियों की जानकारी
- ❖ किसानों का विश्वास
- ❖ त्वरित सलाह एवं सेवा
- ❖ कृषि सामग्री की तत्काल उपलब्धता
- ❖ तकनीक को व्यवहारिक रूप में समझाने की क्षमता

प्रमुख चुनौतियाँ

हालाँकि कृषि आदान विक्रेता कृषि विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं, फिर भी कुछ चुनौतियाँ मौजूद हैं –

1. तकनीकी ज्ञान की कमी–सभी विक्रेताओं के पास पर्याप्त वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान नहीं होता।

2. व्यावसायिक हितों का प्रभाव – कभी–कभी अधिक लाभ वाले उत्पादों की बिक्री को प्राथमिकता दी जाती है, जिससे सलाह की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है।

3. प्रशिक्षण का अभाव– नवीन कृषि तकनीकों और अनुसंधान उपलब्धियों की जानकारी नियमित रूप से नहीं मिल पाती।

4. गलत अनुशंसाओं का जोखिम– अपर्याप्त ज्ञान के कारण अनुचित उत्पादों की सिफारिश किसानों के लिए नुकसानदायक हो सकती है।

कृषि आदान विक्रेताओं की क्षमता बढ़ाने के उपाय

- ❖ कृषि तकनीकी हस्तांतरण को अधिक प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं
- ❖ कृषि आदान विक्रेताओं के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
- ❖ उन्हें कृषि विज्ञान केंद्रों एवं कृषि विश्वविद्यालयों से जोड़ा जाए।
- ❖ लाइसेंसधारी विक्रेताओं के लिए निरंतर शिक्षा (Continuing Education) कार्यक्रम चलाए जाएँ।
- ❖ डिजिटल कृषि परामर्श मंच विकसित किए जाएँ।
- ❖ वैज्ञानिकों और विक्रेताओं के बीच संवाद बढ़ाया जाए।
- ❖ कृषि आदान विक्रेताओं को कृषि विस्तार प्रणाली का औपचारिक भाग बनाया जाए।

निष्कर्ष

वर्तमान कृषि परिदृश्य में कृषि आदान विक्रेता केवल उत्पाद विक्रेता नहीं, बल्कि कृषि ज्ञान, तकनीक और नवाचारों के प्रभावी संवाहक बन चुके हैं। किसानों के साथ उनके निरंतर संपर्क, स्थानीय स्तर पर उनकी उपलब्धता तथा तकनीकी मार्गदर्शन की क्षमता उन्हें कृषि तकनीकों के प्रसार का एक सशक्त माध्यम बनाती है। यदि उन्हें वैज्ञानिक प्रशिक्षण, संस्थागत सहयोग और उचित नियामक समर्थन प्रदान किया जाए, तो वे कृषि विस्तार प्रणाली की प्रभावशीलता को कई गुना बढ़ा सकते हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कृषि आदान विक्रेताओं को "कृषि तकनीकी हस्तांतरण के साझेदार" के रूप में मान्यता दी जाए, ताकि अनुसंधान प्रयोगशालाओं में विकसित तकनीकें शीघ्रता से किसानों के खेतों तक पहुँच सकें और कृषि विकास की गति को नई दिशा मिल सके।

"कृषि आदान विक्रेता वास्तव में कृषि अनुसंधान और किसान के बीच वह जीवंत कड़ी हैं, जो तकनीक को ज्ञान से उत्पादन और उत्पादन को समृद्धि में परिवर्तित करती है।"

जल तनाव शमन में कृषि रसायनों (Agrochemicals) का अनुप्रयोग

निकिता कुमारी मील, डॉ. नलिनी रामावत

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ अधिकांश खेती वर्षा पर निर्भर है। जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, लगातार बढ़ते तापमान तथा भूजल स्तर में गिरावट के कारण फसलों में जल तनाव की समस्या बढ़ रही है। जल की कमी से पौधों की कोशिकीय तुर्गता (Turgor), क्लोरोफिल की मात्रा, सापेक्ष जल सामग्री (Relative Water Content), प्रकाश संश्लेषण तथा उपज प्रभावित होती है। आधुनिक कृषि में कृषि रसायनों का वैज्ञानिक एवं संतुलित उपयोग जल तनाव के प्रभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जल तनाव के कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण, पोषक तत्वों का अवशोषण, कोशिका विभाजन, वृद्धि एवं उपज में उल्लेखनीय कमी आती है। ऐसे में सिंचाई प्रबंधन के साथ–साथ उपयुक्त कृषि रसायनों (Agrochemicals) का पर्णीय छिड़काव पौधों की जल तनाव सहनशीलता बढ़ाने का एक प्रभावी उपाय है। थायोयूरिया, पोटेशियम नाइट्रेट, सैलिसिलिक अम्ल, सिलिकॉन तथा अन्य जैव–उत्तेजक (Biostimulants) पौधों की शारीरिक एवं जैव–रासायनिक प्रक्रियाओं को सक्रिय कर जल तनाव के दुष्प्रभावों को कम करते हैं।

➢ जल तनाव का पौधों पर प्रभाव

- पौधों की वृद्धि एवं विकास में कमी।
- प्रकाश संश्लेषण की दर घट जाती है।
- क्लोरोफिल का विघटन बढ़ जाता है।
- पत्तियों का मुरझाना एवं समयपूर्व वृद्धावस्था।
- पुष्पन एवं बीज निर्माण में कमी।
- उपज तथा गुणवत्ता दोनों प्रभावित होती हैं।
- ऑक्सीडेटिव तनाव के कारण सक्रिय ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) का निर्माण बढ़ जाता है।

➢ जल तनाव शमन में कृषि रसायनों की भूमिका

1. थायोयूरिया (Thiourea)

थायोयूरिया एक सल्फर युक्त यौगिक है जो पौधों में एंटीऑक्सीडेंट एंजाइमों की सक्रियता बढ़ाकर जल तनाव के दुष्प्रभावों को कम करता है। यह क्लोरोफिल संरक्षण, प्रकाश संश्लेषण तथा जल उपयोग दक्षता में सुधार करता है।

मुख्य लाभ

- क्लोरोफिल की मात्रा बढ़ाता है।
- कोशिकाओं की जल धारण क्षमता बढ़ाता है।
- सूखे की स्थिति में वृद्धि एवं उपज में सुधार करता है।

2. पोटेशियम नाइट्रेट (KNO_3)

पोटेशियम पौधों में रंध्र (stomata) के खुलने एवं बंद होने का नियंत्रण करता है, जबकि नाइट्रेट पौधों की वृद्धि में सहायक होता है। पर्णीय छिड़काव से जल संतुलन तथा प्रकाश संश्लेषण में सुधार होता है।

मुख्य लाभ

- जल उपयोग दक्षता (Water Use Efficiency) बढ़ाता है।
- पत्तियों की हरितिमा एवं प्रकाश संश्लेषण बनाए रखता है।
- बीज भराव एवं गुणवत्ता में सुधार करता है।

3. सैलिसिलिक अम्ल (salicylic Acid)

यह एक पौध हार्मोन जैसा कार्य करने वाला यौगिक है जो पौधों में तनाव सहनशीलता बढ़ाता है। यह एंटीऑक्सीडेंट प्रणाली को सक्रिय कर कोशिकीय क्षति को कम करता है।

मुख्य लाभ

- ऑक्सीडेटिव तनाव कम करता है।
- प्रोलीन एवं एंटीऑक्सीडेंट एंजाइमों की मात्रा बढ़ाता है।
- पौधों की जल संरक्षण क्षमता बढ़ाता है।

4. सिलिकॉन (silicon)

सिलिकॉन पौधों की कोशिका भित्ति को मजबूत बनाता है तथा वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) कम करता है।

मुख्य लाभ

- जल हानि कम करता है।
- सूखा सहनशीलता बढ़ाता है।
- पौधों की संरचनात्मक मजबूती बढ़ाता है।

5. जैव–उत्तेजक (Biostimulants)

समुद्री शैवाल अर्क (Seaweed Extract), ह्यूमिक अम्ल, फुल्विक अम्ल तथा अमीनो अम्ल आधारित उत्पाद पौधों की जड़ों के विकास, पोषक तत्व अवशोषण तथा तनाव सहनशीलता में सुधार करते हैं।

➢ जल तनाव शमन के शारीरिक एवं जैव–रासायनिक तंत्र

कृषि रसायन निम्नलिखित प्रक्रियाओं द्वारा जल तनाव कम करते हैं

- सापेक्ष जल सामग्री (RWC) में वृद्धि।

सस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय,जोधपुर, कृषि विश्वविद्यालय,जोधपुर, राजस्थान(342304) *ईमेल: nkmeel2003@gmail.com

- क्लोरोफिल संरक्षण।
- प्रोलीन संचय में वृद्धि।
- एंटीऑक्सीडेंट एंजाइम (SOD, CAT, POD) की सक्रियता बढ़ाना।
- सक्रिय ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) को कम करना।
- जल उपयोग दक्षता में सुधार।

➢ **व्यावहारिक उपयोग**

- पर्णीय छिड़काव सुबह या शाम के समय करना चाहिए।
- अनुशंसित सांद्रता एवं मात्रा का पालन आवश्यक है।
- मध्यम जल तनाव की अवस्था में छिड़काव अधिक प्रभावी होता है।
- उचित सिंचाई प्रबंधन एवं संतुलित उर्वरक उपयोग के साथ इनका प्रभाव अधिक होता है।

➢ **कृषि रसायनों के उपयोग से लाभ**

- कम पानी में बेहतर उत्पादन।
- जल उपयोग दक्षता में वृद्धि।
- सूखा सहनशीलता में सुधार।
- बीज एवं उपज की गुणवत्ता में वृद्धि।
- किसानों की आय एवं संसाधन उपयोग दक्षता में सुधार।

निष्कर्ष

बढ़ते जल संकट एवं जलवायु परिवर्तन के दौर में कृषि रसायनों का वैज्ञानिक उपयोग जल तनाव प्रबंधन की एक प्रभावी रणनीति बनकर उभरा है। थायोयूरिया, पोटेशियम नाइट्रेट, सैलिसिलिक अम्ल, सिलिकॉन तथा जैव–उत्तेजक पौधों की शारीरिक एवं जैव–रासायनिक क्रियाओं को सुदृढ़ कर जल तनाव के प्रतिकूल प्रभावों को कम करते हैं। हालांकि, इनका उपयोग अनुशंसित मात्रा एवं उचित फसल प्रबंधन के साथ ही करना चाहिए। भविष्य में जल–संरक्षण तकनीकों, सूक्ष्म सिंचाई तथा कृषि रसायनों के समन्वित उपयोग से जल की कमी वाले क्षेत्रों में टिकाऊ एवं लाभकारी कृषि को बढ़ावा दिया जा सकता है।

लेखक अपने आलेख dee@raubikaner.org / rajeshvermasct@gmail.com पर हिन्दी फोन्ट कृतिदेव 10 में वर्ड फाईल व पीडीएफ दोनों में भिजवाने का श्रम करें।

ग्रामीण महिलाओं में पोषण जागरूकता

भाविका दैया[1] एवं डॉ. कोमल सिंह[2]

प्रस्तावना –

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। ग्रामीण महिलाओं की भूमिका परिवार, कृषि एवं समाज के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। वे घर के कार्यों के साथ–साथ पशुपालन, कृषि कार्य, बच्चों की देखभाल एवं भोजन प्रबंधन जैसी जिम्मेदारियाँ निभाती हैं। इसके बावजूद पोषण संबंधी जानकारी के अभाव, अशिक्षा, गरीबी तथा स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी के कारण अनेक ग्रामीण महिलाएँ कुपोषण एवं एनीमिया जैसी समस्याओं से प्रभावित रहती हैं। ऐसी स्थिति में ग्रामीण महिलाओं में पोषण जागरूकता बढ़ाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। उचित पोषण न केवल महिलाओं के स्वास्थ्य को बेहतर बनाता है, बल्कि बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पोषण का अर्थ – पोषण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से शरीर को वृद्धि, विकास, ऊर्जा एवं रोगों से सुरक्षा के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। संतुलित भोजन शरीर को स्वस्थ एवं सक्रिय बनाए रखता है।

मुख्य पोषक तत्व निम्न हैं –

- कार्बोहाइड्रेट
- प्रोटीन
- वसा
- विटामिन
- खनिज लवण
- जल

पोषण जागरूकता का उद्देश्य –

ग्रामीण महिलाओं में पोषण जागरूकता का मुख्य उद्देश्य महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य स्तर में सुधार करना तथा कुपोषण को कम करना है। मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं –

- संतुलित आहार के महत्व को समझाना।
- महिलाओं एवं बच्चों में कुपोषण की समस्या को कम करना।
- गर्भवती एवं धात्री महिलाओं को उचित पोषण उपलब्ध कराना।
- एनीमिया एवं कमजोरी जैसी समस्याओं से बचाव करना।
- स्थानीय एवं सस्ते पौष्टिक खाद्य पदार्थों के उपयोग को बढ़ावा देना।
- परिवार के स्वास्थ्य स्तर में सुधार करना।

ग्रामीण महिलाओं में कुपोषण के कारण – ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं में पोषण की कमी के कई कारण होते हैं –

1. पोषण संबंधी जानकारी का अभाव – अनेक महिलाओं को संतुलित भोजन एवं पोषक तत्वों की सही जानकारी नहीं होती।

2. गरीबी एवं आर्थिक समस्या – कम आय होने के कारण पौष्टिक भोजन की पर्याप्त व्यवस्था नहीं हो पाती।

3. अशिक्षा – शिक्षा की कमी के कारण महिलाएँ स्वास्थ्य एवं पोषण के महत्व को सही प्रकार से नहीं समझ पातीं।

4. असंतुलित खान–पान – भोजन में दाल, दूध, हरी सब्जियाँ एवं फल पर्याप्त मात्रा में शामिल नहीं किए जाते।

5. सामाजिक कुरीतियाँ एवं अंधविश्वास – कई स्थानों पर महिलाओं एवं गर्भवती महिलाओं को कुछ खाद्य पदार्थ खाने से रोका जाता है।

6. स्वास्थ्य सेवाओं की कमी – ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं एवं पोषण कार्यक्रमों की सीमित उपलब्धता भी एक बड़ी समस्या है।

पोषण जागरूकता के अंतर्गत किए जाने वाले कार्य – ग्रामीण महिलाओं में पोषण जागरूकता बढ़ाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम एवं गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं।

मुख्य कार्य

1. पोषण शिक्षा कार्यक्रम – गांवों में पोषण शिविर, प्रशिक्षण एवं जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

2. संतुलित आहार की जानकारी – महिलाओं को स्थानीय एवं सस्ते पौष्टिक खाद्य पदार्थों के बारे में जानकारी दी जाती है।

3. रसोई बगीचा– घर के आसपास सब्जियाँ एवं फल उगाने के लिए महिलाओं को प्रोत्साहित किया जाता है।

4. आयरन एवं कैल्शियम युक्त भोजन का सेवन – महिलाओं को हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दालें, दूध एवं बाजरा जैसे खाद्य पदार्थों के सेवन के लिए प्रेरित किया जाता है।

1स्नातक, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर 2अतिथि व्याख्याता, प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर

5. स्वच्छता एवं स्वास्थ्य शिक्षा – स्वच्छ पानी, हाथ धोने की आदत एवं साफ–सफाई के महत्व की जानकारी दी जाती है।

6. सरकारी योजनाओं की जानकारी – महिलाओं को पोषण अभियान, आंगनवाड़ी सेवाएँ, जननी सुरक्षा योजना एवं अन्य सरकारी योजनाओं से जोड़ना।

पोषण जागरूकता की विशेषताएँ

1. स्वास्थ्य सुधार – संतुलित भोजन महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य को बेहतर बनाता है।

2. रोगों से सुरक्षा – उचित पोषण से एनीमिया, कमजोरी एवं कुपोषण जैसी समस्याओं में कमी आती है।

3. कम खर्च में बेहतर पोषण – स्थानीय एवं सस्ते खाद्य पदार्थों के उपयोग से कम लागत में पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो सकता है।

4. बच्चों का उचित विकास – सही पोषण बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायता करता है।

5. परिवार का स्वास्थ्य स्तर बेहतर होना – जागरूक महिला पूरे परिवार के स्वास्थ्य एवं भोजन प्रबंधन को बेहतर बनाती है।

ग्रामीण विकास में योगदान - पोषण जागरूकता ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इससे महिलाओं का स्वास्थ्य सुधरता है, कार्य क्षमता बढ़ती है तथा परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। स्वस्थ महिलाएँ स्वस्थ समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

महिलाओं एवं बच्चों पर प्रभाव

महिलाओं के लिए लाभ –

- स्वास्थ्य स्तर में सुधार।
- एनीमिया एवं कमजोरी में कमी।
- कार्य क्षमता में वृद्धि।
- आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास में वृद्धि।
- परिवार में निर्णय लेने की क्षमता बढ़ना।

बच्चों के लिए लाभ –

- कुपोषण में कमी।
- शारीरिक एवं मानसिक विकास बेहतर होना।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि।
- पढ़ाई एवं विकास में सुधार।

पर्यावरण एवं स्वच्छता में भूमिका - स्वच्छ भोजन, साफ पानी एवं उचित स्वच्छता अच्छे पोषण के लिए आवश्यक हैं। स्वच्छ वातावरण रोगों को कम करता है तथा परिवार को स्वस्थ बनाए रखने में सहायता करता है।

पोषण जागरूकता की चुनौतियाँ - ग्रामीण महिलाओं में पोषण जागरूकता बढ़ाने के लिए कुछ समस्याओं का समाधान आवश्यक है –

- अशिक्षा एवं जागरूकता की कमी।
- गरीबी एवं बेरोजगारी।
- स्वास्थ्य सेवाओं की कमी।
- सामाजिक कुरीतियाँ एवं अंधविश्वास।
- पौष्टिक खाद्य पदार्थों की सीमित उपलब्धता।

सुधार हेतु सुझाव –

- गांवों में नियमित पोषण शिविर आयोजित किए जाएँ।
- महिलाओं को संतुलित आहार की जानकारी दी जाए।
- आंगनवाड़ी एवं आशा कार्यकर्ताओं को अधिक सक्रिय बनाया जाए।
- स्कूल एवं पंचायत स्तर पर पोषण अभियान चलाए जाएँ।
- महिलाओं को रसोई बगीचा लगाने के लिए प्रेरित किया जाए।
- गर्भवती महिलाओं एवं बच्चों की नियमित स्वास्थ्य जांच की जाए।

निष्कर्ष - अंततः कहा जा सकता है कि ग्रामीण महिलाओं में पोषण जागरूकता स्वस्थ समाज एवं राष्ट्र निर्माण का आधार है। उचित पोषण से महिलाओं एवं बच्चों का स्वास्थ्य बेहतर होता है तथा कुपोषण जैसी समस्याओं में कमी आती है। यदि महिलाओं को सही पोषण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ एवं सरकारी योजनाओं का लाभ समय पर मिले, तो ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य स्तर में उल्लेखनीय सुधार किया जा सकता है। इसलिए सरकार, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं एवं समाज को मिलकर पोषण जागरूकता बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयास करने चाहिए।

अगस्त माह के कृषि कार्य

डॉ. एन. के. शर्मा, निदेशक अनुसंधान
स्वा. के. रा. कृ. वि., बीकानेर

सस्य विज्ञान

आगामी माह में खरीफ की प्रमुख फसलों में की जाने वाली सस्य क्रियायें इस प्रकार से है। देरी से वर्षा होने की अवस्था में कम समय में पकने वाली किस्मों की बुआई करें। मोठ की फसल हेतु आर.एम.ओ. सीरीज की किस्में ही बोयें। ग्वार आर.जी.सी.–936 एवं 1017 को प्राथमिकता दवें। अगस्त माह में बाजरे की बुवाई न करें।

बाजरा : पिछले माह बोई गई बाजरे की फसल जो लगभग 25–30 दिन पूरे कर लेगी जिसमें सिफारिश की गई 60 किलोग्राम/हैक्टेयर नत्रजन की आधी मात्रा 30 किलोग्राम/हैक्टेयर का उचित नमी की अवस्था में अथवा वर्षा वाले दिन प्रयोग करें। 200 मि.मी. से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में 10 किलोग्राम नत्रजन/हैक्टेयर की सिफारिश की गई है, जो उपयुक्त वर्षा वाले दिन प्रयोग करें। सिंचित फसल में भी सिफारिस की गई 90 किलोग्राम नत्रजन की शेष आधी मात्रा 45 किलोग्राम/हैक्टेयर के हिसाब से उपयुक्त नमी की अवस्था में प्रयोग करें या सिंचाई कर डाली जा सकती है।उर्वरक प्रयोग से पूर्व खेत को खरपतवार रहित रखें।

ग्वार, मूंग, मोठ एवं तिल :–उपयुक्त सभी फसलों को बुवाई के बाद प्रथम 30 दिन तक खरपतवार रहित रखना चाहिये। निराई–गुड़ाई, बुवाई के 25–30 दिन पर प्रथम सिंच्रई के बाद करें। आवश्यक हो तो 15 दिन बाद दोहरावें। मोठ की फसल में स्प्रिंकलर से सिंचाई करने के बाद गुड़ाई अवश्य करे इससे फसल वृद्धि ठीक होती है।

मूंगफली एवं कपास : मूंगफली में सुईयां बनने के बाद गुड़ाई न करें वर्षा नहीं होने पर सिंचाई अवश्य करें। ऐसी अवस्था में यदि खरपतवार उग जाती है तो उन्हें हाथ से उखाड़कर नष्ट करें। मूंगफली की फसल में पीलापन दिखाई देने पर 0.5 प्रतिशत फैरस सल्फेट + 0.1 प्रतिशत सिट्रिक एसिड का छिड़काव करें। कपास में फूल आने की अवस्था में नत्रजन की शेष मात्रा का उपयोग करना अत्यन्त लाभकारी है।

पौध व्याधि :– **बाजरा** :– वर्षा देरीं सें होने के कारण बाजरा की बुवाई कम हुई होगी। फिर भी यदि कृषक ने देरी से वर्षा होने पर की हो तो उस पर माह अगस्त के मध्य में तुलासिता रोग लगने का अंदेशा हो सकता है। जो कि स्कलेरोस्पोरा ग्रेमिनिकोला नामक कवक से फैलता है। यह रोग पौधे की छोटी अवस्था पर ही देखा जा सकता है। पत्तियां अंशतः/पूर्णतः पीली या सफेद हो जाती है। देर से निकलने वाली पत्तियां पहले वाली पतियों की अपेक्षा अधिक पीली होती है। पत्तियों पर पीली धारियां बनती है। फलस्वरुप पत्तियां सिरे से फटने लगती है। नम वातावरण में पत्ती के निचले भाग पर आसिता के सफेद तन्तु देखे जा सकते है। प्रथम संक्रमण भूमि में पड़े गत वर्ष के रोगग्रस्त पत्तों के कारण एवं द्वितीय संक्रमण या फैलाव वायु व कीटो द्वारा होता है। रोकथाम हेतु रोग के प्रथम लक्षण दिखने पर मैकोजेब 2 ग्राम/लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें। **मूंग एवं मोठ** :–बुआई से पूर्व बीजों को 2 ग्राम कार्बेडेजिम/किलो बीज की दर से उपचारित करें। **प्रमुख रोग :–पीला मोजेक रोगः**– यह विषाणु जनित रोग है। रोग का फैलाव सफेद मक्खी (बेमिसिया टेबेसाई) रोगी पौधों का रस चुसकर स्वस्थ पौधों तक पहुचाती है। अगेती एवं पछेती बोई गई फसल में यह रोग अधिक लगता है। लक्षण पत्तियों पर दिखाई पड़ते है। पत्तियां पीली–हरि–चितकबरी हो जाती है। फलस्वरुप पौधों की बढ़वार रुक जाती है। फलियां कम व छोटी एवं मुड़ी हुई लगती है। दाने छोटे एवं कुर्वरित हो जाते है। रोग का संक्रमण आरंभिक अवस्था में होने पर पैदावार नहीं के बाराबर होती है। **रोकथाम** :– लक्षण दिखाई पड़ते ही डाइमेथोएट या मेटासिस्टोक्स 2 मिली./ली. के पानी के घोल के हिसाब से 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें। **चित्ती जीवाणु रोग** :– मूंग एवं मोठ में यह रोग जैंथोमोनास नामक जीवाणु द्वारा फैलता है। इस रोग में छोटे गहरे भूरे रंग के धब्बे पत्तों पर तथा प्रकोप बढ़ने पर फलियों पर भी दिखाई देता है। फलस्वरुप पौधा मुरझा जाता है। लक्षण दिखाई देते ही एग्रीमाइसीन 2 ग्राम/10 लीटर पानी तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 30 ग्राम/10 लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अन्तर पर दो छिड़काव करें। **ग्वार** :–देरी से बोये जाने वाले ग्वार को जड़ सड़न (मेक्रोफोमिना एवं एस्परजीलस) बचाव हेतु बुआई से पूर्व कार्बेडेजिम 2 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित

करें।अंगमारी एवं झूलसा रोग :– यह रोग माह अगस्त के अन्त में दिखाई पड़ जाता है। जैन्थोमोनास जीवाणु जनित रोग की रोकथाम हेतु स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 100 पी.पी.एम. यानि 10 लीटर पानी में 1 ग्राम का छिड़काव लक्षण दिखाई पड़ते ही करें। **तिल** :– अंगमारी एवं झूलसा रोग से बचाव हेतु ग्वार में दर्शाये गये रोकथाम का उपाय करें। **मूंगफली** :– **टिक्का रोग** :– यह रोग सरकोस्पोरा एरेकीडीकोला एवं सरकोस्पोरा परसोनाटा नामक दो कवकों द्वारा फैलता है। रोग के लक्षण वातावरण में नमी आद्रता बढ़ने पर देखे जा सकते है। दोनों कवकों के लक्षण भिन्न–भिन्न होते है। सरकोस्पोरा एरेकीडीकोला :– अगेती पर्ण चित्ती, बड़े धब्बे, गोलाकार व अनियमित आकार, व्यास 4–10 एम.एम. उपरी सतह पर बनते है। सरकोस्पोरा परसोनाटा :– पछेती पर्ण चित्ती, धब्बे छोटे, गोलाकार, व्यास 1–8 एम.एम. गहरे भूरे रंग एवं काले रंग के ऊपरी एवं निचली दोनो सतह पर, कवक संक्रमण प्रायः बाहरी त्वचा की कोशिकाओं के वेघन रन्ध्रों द्वारा प्रवेश से होता है, पछेती पर्ण चित्ती हानिकारक होती है। **रोकथाम** :– लक्षण दिखाई पड़ते ही मैकोजेब 2 ग्राम 1 लीटर पानी के घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर दो बार करें। **कपास एवं नरमा** :– **ब्लेक आर्म (जीवाणु अंगमारी) रोग** :– रोग जनक जेन्थोमोनास मालवेशियरम नामक जीवाणु। **रोकथाम** : रोग के लक्षण दिखते ही 6 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन + 300 ग्राम कॉपर आक्सीक्लोराइड प्रति बीघा के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें। अथवा 5–10 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन + 250–300 ग्राम सी.ओ.सी. (कॉपर आक्सीक्लोराइड) को 100 लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़कें। एग्रीमाइसीन (100 पी.पी.एम.) सी.ओ.सी. (1000 पी.पी.एम.) के घोल का छिड़काव बुवाई के 60 दिन, 80 दिन बाद करना चाहिए। **लीफ कर्ल विषाणु रोग** :– लक्षण पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं। यह रोग जैमिनी वायरस द्वारा फैलता है। सफेद मक्खी नामक कीट रोग को फैलाने का कार्य करता है। **रोकथाम** :– लक्षण दिखाई पड़ते ही मेटासिस्टॉक्स 0.04 प्रतिशत के घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर दो बार करें अथवा एसीफेट 1 किलोग्राम/हैक्टेयर का छिड़काव करें। **सब्जियों के रोग** :– कद्दू, लौकी, ककड़ी, टिण्डा, तौरई आदि। **झुलसा रोग** :– जनक – कवक – अल्टरनेरिया कुकूमेरिना । **रोकथाम** :– जाईनेब 2 ग्राम/लीटर पानी के घोल का छिड़काव। **छाछियां रोग** :– कवक – एरीसाइफी साइकोरेसियरम। **रोकथाम** :– केराथियान एल.सी.–1 मिली/लीटर पानी के घोल का छिड़काव। **मोजेक रोग** :– जनक सी.एम.वी., विषाणु, रोग का फैलाव संक्रमण सफेद मक्खी,एफीड द्वारा पत्तियों पर पीले धब्बे एवं सिकुड़न हो जाती है। फल आकार में टेढ़े–मेढ़े एवं कम संख्या में बनते है। **रोकथाम** :– मेलाथियॉन 2 मिली./लीटर पानी के घोल का छिड़काव। **जीवाणू पत्ती धब्बा रोग** :– जनक जैन्थोमोनास कूकरबीटी जीवाणु। **रोकथाम** :– 100 पी.पी.एम. स्ट्रेप्टोसाइक्लीन + 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव।

फलों के रोग :– **निम्बू का कैंकर** –रोगजनक – जेन्थोमोनास सिट्राई जीवाणु। **रोकथाम** :– 250 मि.ग्रा. /स्ट्रेप्टोसाइक्लिन + 3 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का प्रति लीटर पानी के घोल का 20 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें। **ऑवला** :– **फ्यूजेरयम बिल्ट** :– कवक फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम पौधे सूख कर मुरझाने लगते है। लक्षण दिखाई देते ही विटावेक्स 2 ग्राम/लीटर पानी के घोल को पौधे की जड़ों की निचली सतह तक पहुँचावे।

कीट विज्ञान :–

ग्वार – ग्वार की फसल में सफेद मक्खी व हरा तेला(जेसिड) नामक कीटों का प्रकोप हो सकता है। इतः इनकी रोकथाम हेतु डाइमिथोएट 30 ई सी 2 मिली/लीटर या थायामिथोक्जाम 25 डब्ल्यू जी 3 ग्राम/लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 3 मिली/10 लीटर या एसीटामाइप्रिड 2 ग्राम/10 लीटर या कार्बोसल्फान 1 मिली/लीटर का घोल बनाकर छिड़काव करें।

मूंग मोठ – इस समय मूंग की फसल में पत्ती काटने वाली लटें पत्ती को काटकर नुकसान पहुँचाती है। अतः इनकी रोकथाम हेतु क्यूनॉलफॉस1.5 प्रतिशत चूर्ण 6 किग्रा/बीघा की दर से छिड़के या क्यूनॉलाफॉस 25 ई सी 2 मिली/लीटर या मोनोक्रोटोफोस 36 एस एल 1.5 मिली/लीटर, यदि केवल रस चूसने वाले कीटो का भी प्रकोप हो तो मोनोक्रोटोफोस का छिड़काव लाभकारी होगा। इसके अतिरिक्त इन कीटों के नियंत्रण हेतु 2 मिली/लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 3 मिली/10 लीटर या डाइमिथोएट 30 ई सी 2 मिली/लीटर का प्रयोग करे।

नरमा कपास :– (अ) कीट : चित्तीदार लट व गुलाबी लट। **रसायन :** साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. 0.4 मिली. या साइपरमेथ्रिन 10 ई.सी. 1.0 मि.ली या डेकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. 1.0 मिली/लीटर या फ्ल्युबेण्डियामाइड 480 ए सी 0.4 मिली/लीटर को 60 लीटर पानी में घोलकर प्रति बीघा की दर से छिड़काव करें। **(ब) कीट :** चेपा, सफेद मक्खी, हरा तेला। **रसायन :** डाइमिथोएट 30 ई.सी. 2.0 मिली/लीटर पानी में या एसीफेट 75 एस.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छड़काव करें। **(स) केवल सफेद मक्खी का प्रकोप हो तो :** नीमयुक्त रसायन 5 मिली + तरल साबुन 1 मिली/लीटर या तिल का तेल 12.5 मिली + तरल साबुन 1 मिली या ट्राइजोफोस 40 ई सी को 2.5 मिली की दर से एसीटामाइप्रिड 20 ई सी 0.4 ग्राम/लीटर या थायोक्लोप्रिड 240 एस सी 1.0 मिली/लीटर की दर से छिड़काव अधिक लाभकारी रहता है।

मूंगफली :– खड़ी फसल में दीमक व सफेद लट के प्रकोप की सम्भावना हो सकती है अतः भृंग निकलने के 20 से 25 दिन के मध्य क्यूलनॉलफॉस 25 ई सी या क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. का 1000 मि.ली. या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस एल 75 मिली/प्रति बीघा की दर से सिंचाई के साथ देवें।

नींबू वर्गीय फल वृक्ष :– बागों में लीफ माईनर, पत्तियों को कुतर कर सुरंग बनाने वाले कीट का प्रकोप हो सकता है। इससे बचाव के लिए एसीटामिप्रिड 20 एस.पी. 0.4 मिली प्रति लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करें।

बैंगन :– कीट : फल छेदक व तना छेदक का प्रकोप हो तो 300 मि.ली. मेलाथियॉन 50 ई.सी. का प्रति बीघा की दर से छिड़काव करें। **भिण्डी** :–कीट फल छेदक व तना छेदक का प्रकोप हो तो 300 मि.ली. मेलाथियॉन 50 ई.सी. का प्रति बीघा की दर से छिड़काव करें। **नोट :** बैंगन एवं भिण्डी के फलों को कम से कम एक सप्ताह पश्चात् तोड़े।

उद्यानिकी कार्यक्रम :– अगस्त माह में फल वृक्षारोपण के लिये सर्वप्रथम गड्ढ़े खोद लेने चाहिये। फल पौधों के चयन के बाद योजना अनुसार वर्गाकार विधि से 1 X1 X 1 मीटर आकार के गड्ढ़े खोदने चाहिये। प्रत्येक गड्ढ़े मे 3–4 तगारी गोबर की सड़ी–गली खाद, एक कि.ग्रा. सुपर फॉस्फेट गड्ढ़े की उपर की मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिलाकर वापस भर देना चाहिये। पौधे लगाने से पूर्व 50 ग्राम क्यूनालफॉस (1.5 प्रतिशत) चूर्ण (4 प्रतिशत) गड्ढ़े की मिट्टी में अच्छी तरह मिला देवें। इसके बाद बरसात होने के बाद आवश्यक चयनित पौधों को गड्ढ़े में लगायें। पौधे लगाने का कार्य शाम के समय करे तथा पौधे लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई कर दें। इस क्षेत्र में मुख्य रुप से बेर, अनार, लसोड़ा, माल्टा, नींबू व खजूर के पौधे लगाने चाहिये। जिनकी किस्म व दूरी निम्न प्रकार है :–

फसल का नाम	किस्में	दूरी
बेर	गोला, सेवा, मुण्डिया, उमराव	6 X 6 मीटर
अनार	गणेश, जालोर सीडलेस, जोधुपर रेड, भगवा(सिंदूरी)	6 X 6 मीटर
लसौड़ा	पुष्कर लोकल	6 X 6 मीटर
नींबू	कागजी, बारहमासी	6 X 6 मीटर
माल्टा	माल्टा ब्लडरेड, मौसमी, जाफा	6 X 6 मीटर
सन्तरा	किन्नों	6 X 6 मीटर
खजूर	हलावी, बरही, खुनीजी, जाहिदी, खदरावी, मेडजूल।	8 X 8 मीटर

अनार में इस समय मृग बहार के फूल आरम्भ हो जाते है। वृक्षों से अच्छे फल लेने के लिये 20 पी.पी.एम. प्लेनोफिक्स का दो सप्ताह के अन्तराल से छिड़काव करें। नींबू वर्गीय पौधों मे सूखी टहनियों को काटकर जला दें। सब्जियों में मिर्च, बैंगन व टमाटर की तैयार की गई पौध का समुचित प्रबन्धन करें एवं प्रतिरोपीत योग्य होने पर साय काल अच्छी तरह से तैयार खेत मे प्रतिरोपीत करें। कुष्माण्ड कुल की सब्जियों में स्टेकिंग करनी चाहिये। सब्जियों में निराई–गुड़ाई का विशेष ध्यान रखें। अगेती मूली, पालक की बुआई का कार्य करें।

Printed and published by Dr. Deepali Dhawan on behalf of Nidesak Prasar Shiksha and Printed at M/s Kishan Enterprises, Magaram Colony, Outside Jassusar Gate, Bikaner and published at Swami Keshwanand Rajasthan Agricultural University, Bikaner, Editor : Prof. Rajesh Kumar Verma.